महर्षि दयानन्द की देन

श्री जी. पी. भट्टाचार्य

: प्रकाशक :

श्री कृष्णलाल खट्टर
संयोजक
महर्षि दयानन्द आगमन शताब्दी समिति
आर्यसमाज मन्दिर, १९ विधानसरणी, कलकत्ता-६

ओ३म्

महर्षि दयानन्द सरस्वती

की

देन

अने

लेखक :-
श्री जी० पी० भट्टाचार्य

Scanned by CamScanner

प्रकाशक :—
श्री कृष्णलाल खट्टर
संयोजक
महर्षि दयानन्द आगमन शताब्दी समिति
आर्यसमाज मन्दिर
१९, विधानसरणी, कलकत्ता—६

मूल्य—पचीस पैसे

मुद्रक :—
जनवाणी प्रिण्टर्स एण्ड पब्लिशर्स प्राइवेट लिमिटेड,
१७८, अपर चितपुर रोड, कलकत्ता—३

Scanned by CamScanner

प्रकाशकीय

महर्षि स्वामी दयानन्दजी सरस्वती दिसम्बर १८७२ में बंगाल में आये थे और लगभग चार मास तक बहुविध शास्त्रार्थ, समालोचना प्रचार आदि का व्यापक कार्य करके अप्रैल १८७३ में यहाँ से लौट गये थे। महर्षि के बंगाल आगमन का ऐतिहासिक महत्त्व है। महर्षि ने इसी यात्रा में कोपीन छोड़कर पूर्ण वस्त्र पहनने तथा जन साधारण में प्रचारार्थ हिन्दी बोलने का निश्चय किया था। प्रतीत होता है कि आर्य समाज की स्थापना के विचार का सूत्रपात भी इसी आगमन में हुआ था।

इस महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक घटना को मनाने के लिये अपने धर्मगुरू, जगद्गुरू महर्षि के प्रति श्रद्धा निवेदन के लिये, तथा महर्षि के आगमन से प्रेरणा लेकर आर्य समाज के व्यापक संगठन को और भी अधिक सजग एवं सक्रिय बनाने के लिये बंगाल के आर्य समाजों एवं प्रतिनिधि सभा ने महर्षि आगमन समारोह का वर्षव्यापी आयोजन किया है।

इस वर्ष व्यापी समारोह का समारम्भ आगामी आर्य समाज स्थापना दिवस पर १६ मार्च १९७२ ई० तदनुसार वृहस्पतिवार चैत्र सुदी प्रतिपदा सं० २०२९ को शहीद मीनार के मैदान में आयोजित विशाल जनसभा से होगा।

इस अवसर पर महर्षि की देन के सम्बन्ध में यह सुन्दर पुस्तिका प्रकाशित की जा रही है। हम इस लेख के विद्वान् लेखक के प्रति अभारी हैं। कृपालु पाठक प्रेम और श्रद्धा से महर्षि की देन का पाठ करेंगे—इस आशाके साथ—

स्थान :—
आर्य समाज कलकत्ता
१९, विधान सरणी,
कलकत्ता - ६

निवेदक :—
कृष्णलाल खट्टर
संयोजक
महर्षि दयानन्द आगमन शताब्दी समारोह
कलकत्ता

Scanned by CamScanner

महर्षि दयानन्द की देन

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

ऐतिहासिक अनुसन्धान ने यह निर्विवाद रूप से प्रमाणित कर दिया है कि वैदिक काल में भारतवर्ष में एक अति उन्नत संस्कृति वर्तमान थी। वैदिक संस्कृति में अनेक कारणों से अध:पतन आरम्भ हो गया, यद्यपि इन कारणों की समग्र सम्पूर्ण व्याख्या विद्वानों ने की नहीं है। इस सामाजिक गतिहीनता और आध्यात्मिक पतन के काल में अनेक सम्प्रदाय सिद्धान्त वैदिक संस्कृति को ललकारते हुए खड़े हो गये। इसी बीच, इधर इस्लाम की शक्ति से आक्रान्त होने पर भारत में राजनीतिक अनिश्चय और सामाजिक संघर्ष का काल आरम्भ हो गया। यद्यपि इस काल में, धार्मिक पुनरुत्थान और विरोधी सिद्धान्तों में समझौते के अनेक प्रयास हुए, किन्तु वे एक निश्चित क्षेत्र में आबद्ध रहे और उन्हें अति सीमित सफलता मिली। प्राचीन वैदिक संस्कृति भूतके अवशेषों में ढ़की पड़ी रही।

ब्रिटेन की भारत विजय के कारण भारत के सामाजिक राजनीतिक, बौद्धिक जीवन में नवचेतना और गतिशीलता का जन्म हुआ। भारत न केवल राजनीतिक और आर्थिक दृष्टि से एक इकाई में बँध गया, बल्कि इसका सम्पर्क पश्चिम के विचार, विज्ञान और तकनीक से हुआ। पश्चिम की इस धारा के साथ ही भारत के अतीत और विस्मृतप्राय संस्कृति का उद्धार विद्वानों के दल, पाश्चात्य और पौरस्त्य, दोनों ने भारत के अतीत के सम्बन्ध में अपने अनुसन्धान के द्वारा, किया। इन दो सांस्कृतिक शक्तियों की क्रिया प्रतिक्रिया आरम्भ हुई। इनमें से एक पश्चिम से आयात, बुद्धिवादी, धर्मनिर्पेक्ष और विज्ञान के आधार पर थी और दूसरी आध्यात्मिक एवं श्रेष्ठ भारत की प्राचीन परम्परा से उद्भूत हुई। इन्होंने देश में एक बौद्धिक क्रान्ति का जन्म दिया जिसे उन्नीसवीं सदी का पुनर्जागरण कहते हैं। यह जागरण

Scanned by CamScanner

बहुपक्षीय सांस्कृतिक आन्दोलन था और विभिन्न विचार धाराएँ, और कभी कभी विरोधी विचारधाराएँ सन्निविष्ट हुई। कुछ लोग जो सर्वथा परम्परावादी थे, इस पुनर्जागरण के प्रभाव से पृथक रहे और उन्होंने रुढ़िगत परम्पराओं और संस्थानों की चेष्टा की। एक और विचारधारा के लोग थे जो पश्चिमी विचारों के प्रवाह में बह गये और वे भारत के अतीत के प्रति अनावृत हीनता का दृष्टिकोण रखने लगे। अधिक शान्त लोगों ने भारत की अतीत परम्परा और पश्चिम के विज्ञान एवं तकनीक में ताल मेल बैठाने की चेष्टा की।

इस सामञ्जस्यवादी विचारधारा का नेतृत्व करने के लिये भारत के दो छोरों से दो महापुरुष पैदा हुए ; एक पूर्वी भारत से, दूसरे पश्चिमी भारत से। सामान्यत: बंगाल के राजा राममोहन राय और गुजरात के महर्षि दयानन्द सरस्वती का सम्बन्ध इसी विचारधारा से है। उन दोनों में कोई मौलिक अन्तर न था ; जो कुछ भेद था वह मात्रा और महत्व का था। राजा राम मोहन राय महान् विद्वान् थे। वे पाश्चात्य एवं पौरस्त्य, संस्कृत समेत, कई भाषाएँ जानते थे। उन दिनों ब्रिटेन से कई प्रसिद्ध विद्वान भारत वर्ष आये और इस देश में अंग्रेजी भाषा की निरन्तर प्रगति होती जा रही थी। उस युग की यह एक महती आवश्यकता थी कि कोई ऐसा समर्थ व्यक्ति पैदा होता जो वेदों का भाष्य मौलिक और विशुद्ध रूप में करता। उस युग के पण्डितों ने वेद भाष्य किये थे किन्तु वे पौराणिक कथाओं के आलोक में थे। उनके भाष्य वैदिक काल की समुन्नत संस्कृति का यथोचित सुस्पष्ट ज्ञान नहीं दे सकते थे। योरोपीय विद्वानोंने इन्हीं पण्डितों से संस्कृत पढ़ी थी अत: अनिवार्यत: योरोपीय विद्वानों की भाषाओं में भी वही रंग चढ़ गया। यह महर्षि दयानन्द ही थे, जिन्होंने असामान्य अन्तर्दृष्टि से वेदों पर न्यस्त पौराणिक कथाभार से वेदों को मुक्त किया और वेदों का अर्थ वैदिक भाषा के दृष्टिकोण से किया। वैदिक संस्कृति की प्रकृति के सम्बन्ध में उनके भाष्य ने एक नूतन पथ का उद्घाटन किया। उन्नीसवीं शती में भारत के सांस्कृतिक इतिहास में महर्षि दयानन्द का आधारभूत कार्य छिया है। इसी ऐतिहासिक परिवेश के आलोक में तथा जिस विशिष्ट ऐतिहासिक आकांक्षा की पूर्ति उन्होंने की, उसके परिप्रेक्ष्य में, महर्षि दयानन्द के अवदानों का मूल्याङ्कन होना चाहिये।

Scanned by CamScanner

संक्षिप्त जीवन चित्र : उनके जीवन के तीन चरण

महर्षि दयानन्द[1] का जन्म १८२४ में मौरवी राज्य, काठियावाड़, गुजरात में एक कट्टर परम्परावादी ब्राह्मण परिवार में हुआ। छोटी अवस्था में ही उनमें धर्म के प्रति गहरी अभिरूचि का विकास हुआ। उनकी आयु अभी बीस वर्षों की भी न थी जब हिन्दुओं की धार्मिक परम्परा पर से उनकी आस्था हट गई और उन्होंने अनुभव किया कि मूर्तिपूजा और बहुदेवतावाद व्यर्थ तथा हानिकारक हैं। इनके परम्परा विरूद्ध विचारों के कारण इनकी अपने पिताजी से अनबन रही। अभी दयानन्दजी की आयु केवल बीस वर्षों की ही थी जबकि इनके पिताजी ने बलात् इनकी इच्छा के विरुद्ध इनका विवाह करना चाहा और दयानन्द जी अपने पिताजी का घर छोड़ने के लिये बाधित हो गये। यहाँ से दयानन्द जी के जीवन का द्वितीय चरण आरम्भ होता है। उन्होंने घर से अपना सम्बन्ध विच्छेद कर लिया और संन्यास ले लिया। उन्होंने सम्पूर्ण भारत का भ्रमण किया और अपनी आँखों हिन्दू समाज का विस्तार से अध्ययन किया : उनके उर्वर मस्तिष्क में, उनके गम्भीर अध्ययन और साधना के फलस्वरूप इस विस्तृत अनुभव ने बहुत सुन्दर परिणाम उत्पन्न किया। सन् १८६० ई० में उन्होंने मथुरा में गुरु स्वामी विराजानन्द जी के पास अध्ययन आरम्भ किया और यह अध्ययन का क्रम ढ़ाई वर्षों तक चलता रहा। सन् १८६४ ई० में उन्होंने जनता में प्रचार करना, उपदेश देना आरम्भ किया। इस प्रकार उनके जीवन के तृतीय चरण का आरम्भ हुआ। इन अपने जन प्रवचनों में वे संस्कृत भाषा का ही प्रयोग किया करते थे, अत: साधारण जनता का विशाल भाग उसे समझ न पाता था। अत: पीछे उन्हनोंने जन भाषा[2] में प्रवचन आरम्भ किया। १० अप्रैल १८७५ ई० को इन्होंने सर्वप्रथम बम्बई में आर्य समाज की स्थापना की। सन् १८७७ ई० में लाहौर में आर्य समाज के विधान को अन्तिम रूप दिया गया। स्वामी दयानन्द जी इस समय अपने सन्देश के प्रचार में पूर्णरूप से तल्लीन हो गये थे। उन्होंने कई पुस्तकें लिखीं। इनमें

१—इनका वास्तविक नाम मूल शंकर था।
२—स्वामी दयानन्द जी इसे 'आर्य भाषा' के नाम से अभिहित करते हैं। सम्पादक

Scanned by CamScanner

सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण 'सत्यार्थ प्रकाश' है। इनमें इन्होंने अपने विचारों की व्याख्या की है और इन्होंने लोगों को आर्य समाज की पताका के नीचे संगठित करनेकी चेष्टा की। देश के पश्चिम भाग में गुजरात, पंजाब, उ० प्र०, और राजस्थान में इनका सन्देश विशेष रूप से सफल हुआ। ३० अक्टूबर १८८३ ई० को महर्षि के पार्थिव शरीर का अन्त हो गया।

भारतीय समस्याओं के प्रति महर्षि दयानन्द के मौलिक विचार :

महर्षि दयानन्दजी सुदृढ़ इच्छा और बहुमुखी प्रतिभा के व्यक्ति थे। उन्होंने भारत के इतिहास पर गहरा प्रभाव डाला है। उन्होंने भारतीय जनता को एक दृष्टिकोण और नूतन गतिशीलता दी। उन्होंने हमारे राष्ट्रीय जीवन को बहुविध समृद्ध किया। उनके बहुपक्षीय अवदानों का मूल्यांकन उन्हें तीन वर्गों में विभक्त करके किया जा सकता है : धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक। उनके अवदान परस्पर बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध रखते हैं अत: इस वर्गीकरण को बहुत दृढ़ता से नहीं पकड़ना चाहिये। राजनीतिक परतन्त्रता के परिप्रेक्ष्य में ईसाई धर्म-प्रचारकों द्वारा हिन्दुओं के धर्म-परिवर्त्तन को स्वामी दयानन्द ने बड़ी चिन्ता से देखा। हिन्दू समाज में प्रचलित अन्धविश्वास और कुरीतियों ने ईसाई धर्मप्रचारको को अच्छा अवसर दिया और वे बड़ी सफलता से हिन्दुओं को ईसाई बना रहे थे। भारत या आर्यावर्त्त की हिन्दू सभ्यता की चेतना को चरने वाली कुरीतियों को दयानन्द का समर्थन नहीं मिल सका। स्वामी दयानन्द को भय था कि वैदिक सभ्यता की यह भूमि राजनीतिक परतन्त्रता और अन्य बुराइयों के कारण अपना स्वत्व खो बैठेगी। यह राजनीतिक परतन्त्रता क्यों थी ? स्वामीजी के विचार से भारत की राजनीतिक परतन्त्रता का कारण था, "परस्पर ईर्ष्या, द्रोह, मतमतान्तर, जीवन में अपवित्रता, शिक्षा का अभाव, बालविवाह. . . . भौतिक सुखों में आसक्ति, असदाचार और अन्य कुरीतियाँ।"[३] इनके विचार में सामाजिक पतन ही राजनीतिक परतन्त्रता

३—वी० पी० वर्मा द्वारा Modern Indian Political Thought में पृष्ठ ६० पर सत्यार्थप्रकाश से उद्धृत।

Scanned by CamScanner

का कारण था। अत: उन्होंने सोचा कि राजनीतिक स्वतन्त्रता का आधार है सामाजिक कुरीतियों को दूर करना और आर्यावर्त्त के लोगों में सामाजिक कुरीतियों का मूल आधार क्या था ? वास्तविक वैदिक संस्कृति से पथभ्रष्ट होने के कारण ही सामाजिक कुरीतियाँ आई थीं। अत: मूल वैदिक संस्कृति का पुन: स्थापन ही हिन्दू-कुरीतियों को दूर करने का एकमात्र उपाय था। इस प्रकार महर्षि दयानन्द के विचार में राजनीतिक स्वतन्त्रता, सामाजिक सुधार और वैदिक सभ्यता के पुनरुद्धार में कार्य-कारण भाव का सम्बन्ध था। वैदिक सभ्यता के पुनरुद्धार से सामाजिक सुधार होगा और इसी से राजनीतिक स्वतन्त्रता का मार्ग प्रशस्त होगा। इस प्रकार दयानन्द में धार्मिक उपदेशक, समाज-सुधारक और राजनीतिक सन्देष्टा, तीनों एक में अनुस्यूत हैं। यद्यपि हम इन तीनों अवदानों को तीन अलग खण्डों में वर्णन करेंगे, फिर भी, इस सामञ्जस्यकारी तत्त्व का ध्यान रखना चाहिये।

धार्मिक सुधार

स्वामी दयानन्द पूर्णत: धार्मिक व्यक्ति थे और वे संन्यासी बने। किन्तु संन्यास के कारण इन्होंने समाज का तिरस्कार कर केवल एकान्त और आत्म-कल्याण को ही लक्ष्य नहीं बनाया। पूर्ण वैराग्य के साथ ये समाज में रहे और इन्होंने समाज के लिए काम किया। स्वामी दयानन्द ने देखा कि तात्कालिक हिन्दू-समाज वैदिक-काल के हिन्दू-समाज से सर्वथा भिन्न था। वेद के आदेश के विरुद्ध लोग अन्धविश्वासपूर्ण परम्परा का पालन हिन्दू-धर्म के नाम पर कर रहे थे। बहु-देवतावाद, मूर्तिपूजा, अस्पृश्यता आदि हिन्दू-धर्म के आवश्यक अंग माने जा रहे थे किन्तु स्वामी दयानन्द ने देखा कि वेदों के आधार पर इनमें से किसी की भी प्रामाणिकता नहीं थी। उन्होंने देखा कि हिन्दु अन्धविश्वासों से ऊबकर बहुत से लोग ईसाइयत की ओर आकृष्ट होते जा रहे थे। वैदिक धर्म की वास्तविकता दिखाकर उन्होंने इस गतिविधि को अवरुद्ध करने की चेष्टा की।

स्वामी दयानन्द ने विचार किया और देखा कि हिन्दु-सभ्यता कापतन पुराणों की धर्म-परम्परा से आरम्भ हुआ। हिन्दू-विचारधारा की अन्तिम कड़ी, पुराण-कथाएँ ही प्रचलित हिन्दू-धर्म का आधार थीं। स्वामी दयानन्द ने बताया कि ये

Scanned by CamScanner

पुराण कथाएँ न तो वेदों द्वारा समर्थित हैं और न स्मृतियों द्वारा ही। पौराणिक काल के वेदभाष्यकारों ने अपने विचारों का समर्थन वेदों में खोजने की चेष्टा की। अत: उन्होंने वेदों के भाष्य अपने ढंग से कर लिए। सायण और महीधर जैसे भाष्यकर्त्ता इसी वर्ग के हैं। वे प्राय: वेदों के पौराणिक भाष्यकार के रूप में सम्मिलित जाने जाते हैं। उन्होंने वेदों का ऐसा भाष्य किया जिसमें पुराण कथाओं को वेदों से प्रमाणित करने की चेष्टा थी। पश्चिम के विद्वानों ने इन भाष्यों को प्रमाणरूप में स्वीकार किया। अत: इनके वेद-भाष्य भी सायण, महीधर और इसी विचारधारा के दूसरे भाष्यों से प्रभावित हुए। परवर्ती काल के भाष्यकारों के प्रभाव से मुक्त होकर स्वामी दयानन्द ने मूल ग्रन्थों के आधार पर वेदों का भाष्य किया।

यह सर्वसम्मत है कि निरुक्तकार यास्क वेदभाष्य के सम्बन्ध में सर्वोच्च प्रमाण है। सायण और महीधर ने भी सम्मानपूर्वक उनके उद्धरण दिये हैं। स्वामी दयानन्द ने यास्क प्रतिपादित निरुक्त के सिद्धान्तों के आधार पर वेद भाष्य करने का प्रयास किया। यास्क के अनुसार वेद के सभी पद अपने यौगिक अर्थ में प्रयुक्त हैं। इसका अभिप्राय यह हुआ कि उनमें व्यक्तिवाचक संज्ञा या ऐतिहासिक सन्दर्भ हो ही नहीं सकता। पौराणिक अथवा ऐतिहासिक विचार-धारा के प्रतिकूल यास्क को वेदभाष्य की नैरुक्तिक परम्परा का संस्थापक माना जा सकता है। अन्ध-परम्परा के सर्वथा विरुद्ध स्वामी दयानन्द ने नैरुक्तिक विचारधारा का अनुसरण करते हुए वेद-ग्रन्थों का अर्थ किया। वेदों में प्रयुक्त अग्नि, वायु, सूर्य, आकाश, आदि पद, निरुक्त या निर्वचन प्रक्रिया के अनुसार, प्रकृति के विभिन्न विभागों पर शासन करने वाले देवताओं के वाची नहीं हैं। इनका दो अर्थों में प्रयोग हुआ है। कभी वे भौतिक पदार्थों का बोध कराते हैं, तो कभी सर्वशक्तिमान् परमात्मा का। अग्नि, वायु, सूर्य, सोम आदि पद उसी वर्णनातीत का वर्णन करने के लिए प्रयोग किये जाते हैं और उसे ही वेदों में 'ओ३म्' कहा गया है। इन शब्दों का प्रयोग किसी भौतिक पदार्थ का वर्णन कर रहा है या वर्णनातीत सर्वशक्तिमान् का, यह निर्णय केवल सन्दर्भ के आधार पर ही किया जा सकता है। इन विभिन्न पदों का निर्वचनानुसारी भाष्य करके स्वामी

Scanned by CamScanner

दयानन्द ने वेद-मत्रों का अति सुरुचिपूर्ण अर्थ किया। उनके अनुसार उर्वशी स्वर्गीय अप्सरा और इन्द्र के दरबार की सुन्दरी नहीं अपितु विद्युत् है। जिन वेद-मन्त्रों में बालिश कथाओं का वर्णन समझा जाता था, दयानन्द के अनुसार उनमें अति महत्त्वपूर्ण सत्य उद्घाटित हुआ है। इन सिद्धान्तों के आधार पर स्वामी दयानन्द ने जो वेदभाष्य किये, उनसे प्राचीन भारत की अति उन्नत एवं वैज्ञानिक संस्कृति का परिचय मिला। उनके प्रसिद्ध ग्रन्थ 'सत्यार्थप्रकाश' में, जिसे उन्होंने हिन्दी में लिखा था, उनकी व्याख्या मिलती है। प्रथम दश समुल्लासों में वैदिक शिक्षा का वर्णन है। एकादश समुल्लास में पौराणिक और तान्त्रिक मान्यताओं की व्याख्या है। स्वामीजी के अनुसार इनमें वेदों से सुस्पष्ट मतभेद है। द्वादश समुल्लास में, बौद्ध, जैन और चार्वाक मतों की समालोचना है। इन नास्तिक विचारों के कारण, भारतीय सभ्यता संस्कृति का पतन हुआ है अत: स्वामी दयानन्द उनके प्रचार को हर प्रकार से रोकना चाहते थे। इस पुस्तक में स्वामी दयानन्द की वैदिक विद्या पूर्णरूप से प्रकट हुई है। कोई उनके विचारों से सहमत हो या न हो, किन्तु जो भी इस पुस्तक को पढ़ेगा, वह उनकी विश्लेषण क्षमता और विद्या की गम्भीरता की प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकता। इस ग्रन्थ का मूल उद्देश्य यह था कि प्राचीन वैदिक सभ्यता के आधार पर जो "जड़ें आई हैं, उन्हें काट-छाँटकर"[४] भारतीय जन-जीवन के पुनर्निर्माण के लिए लोगों को प्रोत्साहित किया जाय।

स्वामी दयानन्दजी ने सत्यार्थ प्रकाश में यह स्थापना की कि वेद धर्म एक एकेश्वरवाद का हामी है। वेदों में ऐसे मन्त्र हैं, उनमें ईश्वर की एकता का वर्णन है किन्तु साथ ही ऐसे सन्दर्भ हैं, जिनमें अनेक देवों का प्रसंग है। इससे बहुतों ने यह निश्कर्ष निकाला कि वेद धर्म बहुदेवताबादी है। वेदधर्म की व्याख्या के लिये मैक्समूलर ने Henotheism[५] शब्द को सर्वापेक्षया अधिक उपयुक्त समझा। उसने कहा कि बहुदेवतावाद से हम देवों की एक ऐसी व्यवस्थित परम्परा समझते

४–MacDonald, The Government of India. p. 236.

५–बिना दूसरे देव को इन्कार किये एक देव की पूजा। —सम्पादक

Scanned by CamScanner

हैं जिस में सर्वशक्तिमान् प्रभु (चाहे Zeus हो or Jupiter) हो सबसे ऊपर और उसके अन्दर अनेक देवताओं का स्थान है। उसे वेदों में ऐसी कोई व्यवस्था नहीं मिलती है। अत: मैक्समूलर ने Henotheism शब्द का चुनाव किया। स्वामी दयानन्द इन विचारों से सहमत न हुए। उन्होंने कहा कि वेद में एक ही ईश्वरका वर्णन है यद्यपि उसे अनेक नामों से अभिहित किया गया है। जिस प्रकार ईश्वर के विशेषण अनन्त हैं, उसी प्रकार उसके नाम भी अनन्त हैं। स्वामी दयानन्द के अनुसार अग्नि, वायु, सूर्य आदि पद भिन्न-भिन्न देवताओं के वाचक न होकर एक ही सर्वशक्तिमान् ईश्वर के विभिन्न विशेषण हैं। ये विभिन्न पद भौतिक पदार्थों के नाम भी हैं अत: जैसा हमने पहले कहा है, इन पदों का वास्तविक अर्थ उनके सन्दर्भ से ही निर्णीत हो सकता है।

स्वामी दयानन्द के वेदभाष्य बहुतों को उपहसनीय लगते हैं? कुछ लोगों ने उन्हें अशुद्ध व्याख्या करने वाला समझा। उनकी व्याख्या सचमुच परम्परा निरपेक्ष है, अत: परम्परा और अन्धविश्वास के विरुद्ध है। किन्तु यह उनके तिरस्कार का कोई कारण नहीं। उनकी व्याख्या निश्चित सिद्धान्तों के आधार पर है और वे इन सिद्धान्तों का अनवरत अनुसरण करते हैं। कोई या तो यह दिखा दे कि वेदभाष्य की निर्वचन पद्धति स्वयं अशुद्ध है या फिर यह दिखा दे कि स्वामी दयानन्द के भाष्य में यह पद्धति संगत नहीं हुई। किन्तु आज तक उस स्तर पर स्वामी दयानन्द से किसी ने हाथ मिलाने का साहस नहीं किया।

समाज सुधार :

वैदिक संस्कृति के पुनरुद्धार की चेष्टा के साथ ही स्वामी दयानन्द ने हिन्दू समाज के कई सुधारों की चेष्टा की। उन्होंने देखा कि हिन्दू समाज में प्रचलित तमाम कुरीतियाँ, वेद के आदर्श के विरुद्ध हैं और उन्हीं के कारण हिन्दू समाज ईसाइयों के आक्रमण का शिकार बना हुआ है। अत: उन्होंने हिन्दू समाज से इन कुरीतियों को दूर करने की चेष्टा की।

स्वामी दयानन्द मूर्ति पूजा के कट्टर विरोधी थे और इसके विरुद्ध उन्होंने

Scanned by CamScanner

सोलह आक्षेप किये।[६] उन्होंने बलि प्रथा का दृढ विरोध किया और हिन्दुओं द्वारा विदेश यात्रा को प्रोत्साहन दिया। राजा राममोहन राय की तरह वे भी नारी-स्वतन्त्रता के समर्थक थे। इन्होंने देखा कि वैदिक सिद्धान्तों के विरुद्ध, बहुत से अमानवीय बन्धन हिन्दु स्त्रियों पर लगे हैं। स्त्री और पुरुषों की समानता के सिद्धान्त का प्रचार करते हुए उन्होंने स्त्रियों पर लगे इन बन्धनों को हटाने की चेष्टा की। उन्होंने बाल विवाह का विरोध किया। उनके मतानुसार २५ वर्ष से कम के पुरुष और १६ वर्ष से कम की स्त्री का विवाह नहीं होना चाहिये। वह स्त्री शिक्षा और विधवा विवाह के प्रबल समर्थक थे।[७] स्वामी दयानन्द ने तदानीन्तन प्रचलित जाति प्रथा का विरोध किया। उन्होंने वैदिक वर्णाश्रम धर्म के पुनरुद्धार की चेष्टा की। उन्होंने विचार किया कि वैदिक सिद्धान्तानुसार किसी का वर्ण उसके जन्म से नहीं अपितु उसके गुण कर्म स्वभाव से निश्चय होना चाहिए। उनके अनुसार, वैदिक सिद्धान्तों के आधार पर समाज को चार वर्णों, में ही विभक्त करना चाहिये। हिन्दुओं में प्रचलित असंख्य जाति उपजाति की प्रथा को उन्होंनें वैदिक समाज संघटन की भावना के विरुद्ध कहा। हिन्दू समाज में व्याप्त अस्पृश्यता का उन्होंने विरोध किया। महात्मा गाँधी ने स्वामी दयानन्द के दृष्टिकोण की प्रशंसा करते हुए कहा है—"अस्पृश्यता के विरुद्ध स्वामी दयानन्द की सुस्पष्ट घोषणा असंदिग्ध रूप से हमारे लिए उनके समृद्ध दाय में से एक है।"

महर्षि दयानन्द ने शुद्धि आन्दोलन के रूप में आर्य समाज के पुरोगम में एक क्रान्तिकारी योजना दी। उनका विश्वास था कि खोये हुए हिन्दुओं को, जो दूसरे मतों में चले गये हैं, उनको पुनः हिन्दुओं में मिला लेना चाहिए। यह पुन-

---

६—डा० चिरंजीव भारद्वाजकृत सत्यार्थ प्रकाश का अंग्रेजी अनुवाद पृ० ३५८-६०। यह प्रसंग मूल सत्यार्थ प्रकाश में एकादश समुल्लास पृ० तृ ९७-९८ (वैदिक यन्त्रालय, अजमेर ३४ वाँ प्रकाशन) सम्पा०।

७—विधवा विवाह के स्थान पर ऋषिने 'नियोग' प्रथा का समर्थन किया। आज के समाज में नियोग कठिन है अतः विधवा विवाह कम हानिकर प्रथा के रूप में समर्थित है।
—सम्पादक

Scanned by CamScanner

हिन्दुकरण का आन्दोलन शुद्धि आन्दोलन के नाम से जाना जाता है। उदार और प्रबुद्ध वैदिक मान्यताओं के साथ उनका विश्वास था कि हिन्दुओं का दरवाजा सदा उनके लिये खुला रहना चाहिये जो किसी समय किसी कारण से इसे त्याग कर अन्यत्र चले गये थे।

स्वामी दयानन्द अपने देश की शिक्षा व्यवस्था में आमूल परिवर्तन लाने के लिये सचेष्ट थे। अंग्रेजों द्वारा चालित शिक्षा व्यवस्था की जो भी अच्छाई हो, किन्तु इसका देश की विशाल सांस्कृतिक परम्परा से कोई सम्बन्ध न था। इस शिक्षा व्यवस्था की उपज सांस्कृतिक दृष्टिकोण से जनसाधारण के लिये विदेशी थी। स्वामी दयानन्द इस व्यवस्था को बदलना चाहते थे। इस प्रकार राष्ट्रीय शिक्षा व्यवस्था का, जिसका स्वदेशी आन्दोलन के दिनों अधिक प्रचार हुआ, आदि प्रचारक स्वामीजी को समझना चाहिए। उनका कहना था कि भारतीय लोग अपने देश का विशुद्ध सांस्कृतिक साहित्य पढ़ें और इसके लिये उन्हें संस्कृत और वेद की ओर लौट आना चाहिये। छात्र केवल ज्ञान ही न प्राप्त करें, बल्कि अपने चरित्र से समाज के अच्छे सदस्य बनें। दयानन्द-एँग्लो-वैदिक कालेज की स्थापना महर्षि के विचारों के आधार पर की गई थी[८] इसमें संस्कृत और वेदों केअतिरिक्त अंग्रेजी, पश्चिमी विज्ञान, पश्चिमी दर्शन, इतिहास आदि भी पढ़ाये जाते थे।[९] इससे यह सुस्पष्ट है कि दयानन्द का विरोध पश्चिमी विज्ञान और अंग्रेजी भाषा से नहीं था। किन्तु राष्ट्रीय पुनरुद्धार और जातीय उत्थान के लिये वे विगत वैदिक सभ्यता और संस्कृत भाषा का ज्ञान अनिवार्य मानते थे।

स्वामी दयानन्द द्वारा स्थापित आर्य समाज वर्तमान भारत के समाजिक जीवन में एक महत्वपूर्ण शक्ति है। क्रियात्मक क्रियाकलाप से इसने आर्यावर्त में एक नये समाज को स्थापित करने की चेष्टा की है। स्त्री और पुरुष दोनों के लिये एक बड़ी

८—आर्य समाज में मतभेद और दो दलों की सृष्टि (एक के नेता लाला हंसराज और दूसरे के नेता स्वामी श्रद्धानन्द) का वर्णन इस लेख में अनपेक्षित है। हाँ, इतना कहा जा सकता है कि डी० ए० वी० कालेज प्रथम दल के अन्दर रहा और दूसरे दल ने एक नूतन शिक्षण संस्था की स्थापना हरद्वार के पास गुरुकुल नाम से की।

९—Hans Kohu, "A History of Nationalism in the East" p. 65.

Scanned by CamScanner

संख्या में स्कूल कालेज चलाने के अतिरिक्त इसने अच्छी संख्या में अनाथालय और विधवा सदनों की स्थापना की है। दलित वर्गों के लिये समाज का अपना मिशन है और इसने सहस्रों पद्दलितों को उठाकर उच्च वर्ग की प्रतिष्ठा दी है। इसने बड़ी दृढ़ता और निष्ठा से स्त्री स्वतन्त्रता के प्रश्न को लिया और बड़ी संख्या में बाल-विधवाओं की सुख-सुविधा की व्यवस्था की। अकाल और बाढ़ जैसे प्रकृति के प्रकोपों के अवसर पर आर्य समाज ने अनेक बार रिलीफ का काम किया है।"

राजनीतिक सुधार :

शब्द के अपने तकनीकी अर्थ में दयानन्द राजनीतिक चिन्तक नहीं थे, किन्तु उनके विचारों के सतर्क स्वाध्याय से उनका राजनीतिक चिन्तन उद्घाटित होता है। स्वयं राजनीति की परिधि से बाहर रहकर भी उन्होंने राजनीतिक क्षेत्र में भी प्रभूत अवदान किया है। अत्यन्त धार्मिक होकर भी उन्होंने मनुष्य के अस्तित्व के भौतिक पक्ष की उपेक्षा नहीं की। मानव जीवन का कोई भी पक्ष उनके लिये परकीय नहीं था और उनके मिशन का उद्देश्य था कि सम्पूर्ण मानव जीवन को अध्यात्म दर्शन के निर्देश में लाया जाय।

उनके राजनीतिक विचार की अत्यन्त आकर्षक विशेषता जो बड़ी सरलता से हमारा ध्यान आकृष्ट कर लेती है, उनके राष्ट्रीयता के विचार के अवदान में है। वर्तमान विचार परम्परा में राष्ट्रीयता अनिवार्यतः राजनीतिक विचार है किन्तु इसका पोषण सांस्कृतिक विचार से होता है। अंग्रेज सरकार ने रेल, तार, समान-व्यवस्था और विधि की सृष्टि करके राजनीतिक राष्ट्रीयता की परिस्थिति को ठीक कर दिया था। स्वामी दयानन्द का काम था कि राष्ट्रीयता के इस विचार में वे इसकी आत्मा सन्निविष्ट कर दें। वैदिक संस्कृति की वास्तविक प्रकृति और आभा की व्याख्या करके उन्होंने जनमानस में उसके प्रति गौरव का भाव पैदा करने

१०–See Introduction of Ghasi Ram to the Commentary on the Vedas & Swami Dayanand.
आर्य समाज के इतिहास के लिये लाला लाजपतराय की पुस्तक द्रष्टव्य है।

Scanned by CamScanner

का प्रयास किया। पश्चिम के प्राच्य विद्याविदों ने भारत के अतीत की संस्कृति का पता करने की बड़ी चेष्टा की किन्तु फिर भी वे वैदिक संस्कृति और पतनोन्युख पौराणिक काल की संस्कृति में अन्तर न दिखा सके। प्राच्य विद्या के इस महत्त्वपूर्ण पक्ष की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट करने वाले स्वामी दयानन्दजी प्रथम व्यक्ति थे। इस सम्बन्ध में डा० मजुमदार का उद्धरण उपयुक्त होगा। वे लिखते हैं, गत शताब्दी की सप्तति में श्रीरामकृष्ण और स्वामी दयानन्द जैसे धार्मिक नेताओं ने भारत को अपनी संस्कृति का गौरव बोध कराने में पश्चिम के विद्वानों की तुलना भें बहुत अधिक काम किया।[११] किन्तु श्रीराम कृष्ण और स्वामी दयानन्द के दृष्टिकोणों में जो भेद है उससे आँख नहीं मूंदी जा सकती। श्री रामकृष्ण ने भारत की समग्र प्राचीन संस्कृति को जनप्रिय बनाने का प्रयास किया, जब कि स्वामी दयानन्द ने पौराणिक सभ्यता को त्याग कर केवल वैदिक संस्कृति के पुनरुद्धार की चेष्टा की। वस्तु तः बहुत सारे अन्ध-विश्वासी आचार विचार जो पतनोन्मुख पौराणिक कथा साहित्य की देन हैं, किसी प्रकार भी समर्थित नहीं हो सकते। विभेद की यह तीव्रतर भावना स्वामी दयानन्द को श्री राम-कृष्ण से पृथक करती है।

स्वामी दयानन्द की तरह राजा राममोहन रायने भारतीय राष्ट्रीयता के सांस्कृतिक अंग को समृद्ध करने की चेष्टा की। भारतकी उन्नीसवीं शती के इन दो प्रमुख व्यक्तियों में अंतराल की अवहेलना कोई समीक्षात्मक अध्ययन करने वाला विद्यार्थी नहीं कर सकता। राजा राम मोहन राय और ब्राह्म समाज का दृष्टिकोण अनिवार्यतः बहुस्रोतों से श्रेष्ट सञ्चयन (Eclectic) का था उनकी चेष्टा थी कि हिन्दू मुसलमान और ईसाई आदि विभिन्न सभ्यताओं में सामञ्जस्य करके एक नूतन रूप बनाया जाय। दूसरी ओर स्वामी दयानन्द का कार्य था, लोगों को विशुद्ध वैदिक परम्परा का परिचय कराना। उन्होंने भारतीय जनता को प्रेरित किया कि वे पश्चिम के विज्ञान और तकनीक के विभिन्न पक्षों को

११–Dr. Bemav Behari Mazumdar, History of Political thought from Ram Mohan to Dayanand, Vol. I: Bengal p. 336.

Scanned by CamScanner

लेकर वैदिक सिद्धान्तों के आधार पर एक नूतन सभ्यता की सृष्टि करें। हंस कान ने उचित ही संकेत किया है कि "यद्यपि ब्राह्म समाज और आर्य समाज एक ही क्रान्ति की उपज थे। किन्तु यह आर्य समाज ही था जिसने प्राचीन भारत को जगा कर बीसवीं शती के लिये मार्ग प्रशस्त कर दिया।"[१२] यह यहाँ कहा जा सकता है कि श्रीमती एनीवेसेन्ट के अनुसार आर्य समाज (और थियोसोफिकल सोसाइटी) के प्रचार के युग ने श्वेत जाति की उच्चता के विश्वास को कम किया।[१३]

यद्यपि राजनीतिक विचार धारा में स्वामी दयानन्द का मुख्य अवदान था भारतीय राष्ट्रीयता में सांस्कृतिक तत्त्व का सन्निवेश तथापि वे संकुचित राष्ट्रीयतावादी न थे। उन्होंने राष्ट्र भक्ति का समर्थन किया किन्तु मिथ्या राष्ट्राभिमान का विरोध किया। उन्होंने विश्व बन्धुत्व के विचार को बलदिया किन्तु इनका विश्व बन्धुत्व का विचार राष्ट्र भक्ति के विरुद्ध नहीं जाता। परवर्ती काल के श्री अरविन्द की तरह, इन्होंने कहा कि विभिन्न राज्यों की संस्कृतियों को चाहिये कि वे परस्पर संघर्ष में पड़ने के बजाय एक विश्व जननी मानव सभ्यता के निर्माण में योगदान करें। उन्होंने बहुबार घोषणा की, कि धरती के राष्ट्रों के द्वारा; पार्थक्य और पक्षपात की जो दीवारें बनाई गई हैं, वे शीघ्र ही एक महान् विचार के सम्मुख धराशायी हो जाँयगी और आनन्दोत्सव में सब राष्ट्र सम्मिलित होंगे।[१४] स्वामी दयानन्द ने न तो प्रत्येक भारतीय वस्तु का समर्थन किया, न ही प्रत्येक विदेशी वस्तु की निन्दा की। वे प्राचीन भारत की संस्कृति के कई तत्त्वों के महत्तम समालोलोचक थे। उन्होंने स्वयं कहा है : "यद्यपि मैं आर्यावर्त देश में पैदा हुआ हूँ और वसता हूँ तथापि जैसे इस देश के मतमतान्तरों की झूठी बातों का पक्षपात न कर यथातथ्य प्रकाश करता हूँ वैसे ही दूसरे देशस्थ व मत वालों के साथ भी वर्तता हूँ। जैसे स्वदेश वालों के साथ मनुष्योंन्नति के विषय में वर्तता हूँ वैसा विदेशियों के साथ भी, तथा सब सज्जनों को वर्तना योग्य है।[१५] स्वामी दयानन्द ने कई बातों में

१२–Hans kohn, पूर्व उद्धृत पृ० ६३
१३–श्रीमती वेसेन्ट का भारतीय राष्ट्रिय काँग्रेस में १९१७ में दिया गया भाषण।
१४–Alokanand Maharshi the Masters world union Seheme pp. 12-13.
१५–सत्यार्थ प्रकाश की भूमिका से

Scanned by CamScanner

अंग्रेजों के राष्ट्रीय चरित्र की प्रशंसा की है। यथा उनकी उच्चतर सामाजिक दक्षता, उनके सुन्दरतर सामाजिक संगठन, उनका आत्म त्याग और उनकी साहसी प्रकृति, उनकी अनुशासन प्रियता आदि। पश्चिमी सभ्यता में भी वे कई गुणों के कायल थे और उन्होंने दोनों में सामञ्जस्य का समर्थन किया। उनके विश्वजनीन दृष्टिकोण में कहीं मिथ्या प्रतिष्ठा के लिये स्थान न था। दयानन्द के दृष्टिकोण का वर्णन करते हुये आचार्य प्रणवानन्द ने लिखा है : भारत "प्राच्य संकृति का घर है और इंगलैण्ड पाश्चात्य संस्कृति का। प्राच्य संस्कृति अनिवार्यत: आध्यात्मिक है और पाश्चात्य संस्कृति अनिवार्यत: भौतिक। दोनों एक दूसरे के बिना अपूर्ण हैं। पूर्णतया दोनों के सहयोगी सामञ्जस्य में है। यह दैवी विधान है कि भारत और इंगलैण्ड एकत्र हुए हैं। दोनों संस्कृतियाँ भारत में एकत्र हुई हैं जिससे एक दूसरे के अनुभव से लाभ उठा सकें। एक दूसरे की अपूर्णता की पूर्ति हो सके।"[१६] उनके विचारों का सतर्क अध्ययन यह सुस्पष्ट करता है कि उनका मस्तिष्क सर्व प्रकार की संकीर्णताओं और मिथ्या अभिमान से मुक्त था।

यदि उनके 'दर्शन' के लिये किसी वर्तमान 'वाद' का प्रयोग करना हो तो यह अच्छा होगा कि उन्हें 'मानववादी' कहा जाय। उनके मानववाद का आधार आध्यात्मिक मनुष्य है। मनुष्य अपने अन्तरात्मा में स्थित दैवी स्फुलिंग का प्रतिनिधि है और यही देवता सम्पूर्ण मानव जाति को एकत्र करती है। एक व्यक्ति किसी पशु से भिन्न न होगा यदि वह अपनी भौतिक कामनाओं के अधीन बना रहे। मनुष्य के भीतर स्थित दैवी शक्ति के स्फुलिंग को विकसित करके मानव अपनी मानवता का विकास कर सकता है। स्वामीजी ने स्वयं कहा है : "जैसे पशु बलवान होकर निर्वलों को दु:ख देते और मार भी डालते हैं, जब मनुष्य शरीर पा के वैसा ही काम करते हैं तो वे मनुष्य स्वभाव युक्त नहीं किन्तु पशुवत् हैं। और जो बलवान होकर निर्बलों की रक्षा करता है वही मनुष्य कहाता है और जो स्वार्थवश होकर पर-हानि मात्र करता रहता है, वह जानो पशुओं का भी बड़ा

१६—Acharya Pronobananda Thakur Dayanand and Arunachal Mission. Suoted in Alokanand Mahabharati, op. cit., pp. 10-11

Scanned by CamScanner

भाई है।" १४ मनुष्य केवल दैवी शक्तियों के विकास के द्वारा ही अपनी पशु सत्ता को दबा सकता है। तभी उसे मानव एकता की अनुभूति होगी और वह केवल अपने स्वार्थ की न सोच कर जन-साधारण के कल्याण के लिये कार्य करेगा। स्वामी दयानन्द ने मानव को इस आध्यात्मिक स्तर तक उठाने की चेष्टा की वह अपने शिष्यों से प्राय: कहते थे। "हम संसार के कल्याण के लिये आये हैं, हमें अपने सुख की चिन्ता नहीं करनी चाहिए।" प्राय: वे और भी कहते, "संसार का कल्याण अपने सुख या अपने मित्रों और साथियों के कल्याण से उच्चतर है।"[१८] इस सम्बन्ध में हम स्वामी दयानन्द द्वारा प्रतिपादित आर्य-समाज के नवम और दशम नियमों का उद्धारण दे सकते हैं। नवम नियम है : "प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट न रहना चाहिए, किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए।" दशम नियम इस प्रकार है, "सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिए और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र हैं।" इस प्रकार समाज-कल्याण ही आर्य-समाज का अन्तिम उद्देश्य है। स्वामी दयानन्द सम्भवत: महान् मानवतावादी थे और उनका अन्तिम उपदेश था कि मनुष्य को स्वार्थी नहीं बनना चाहिए, बल्कि इसे दूसरों के हित के लिये कार्य करना चाहिए।

स्वामी दयानन्द ने अपने मानवतावादी दृष्टिकोण में एक नूतन समाज व्यवस्था का स्वप्न देखा, जिसे नैतिक समाजवाद कह सकते हैं। उनकी दृष्टि सार्वजनीन मानव-कल्याण परिषद् की थी। सभी देश स्वतन्त्र और समान होंगे और हर राष्ट्रीय इकाई स्वतन्त्र व्यक्तियों का समुदाय होगा। ऐसे आदर्श समाज में न मुद्रा न व्यसाय वाणिज्य अपने परम्परागत रूप में होंगे। वे विभिन्न केन्द्रों से वस्तुओं के आदान-प्रदानमात्र होंगे। रेल, तार, हवाई सेवा देश के कल्याण के लिये होंगी। "इस व्यवस्था में लाभ की भावना के स्थान पर सम्पूर्ण समाज की सेवा की भावना होगी—प्रत्येक व्यक्ति सब के लिये और सब

१७—सत्यार्थ प्रकाश की भूमिका

१८—Alokanand a Mahabharati op. cit., p. 12.

Scanned by CamScanner

प्रत्येक व्यक्ति के लिये जीवित रहेंगे।"[१९] स्वामी दयानन्द ने एक सच्चे समाजवादी की भाँति समाज के शोषित और पददलित वर्गों के स्वार्थ का समर्थन किया। उन्होंने कहा, "इस नवयुग में भगवान दलित वर्ग में प्रकट होंगे। महान् धर्मोपदेष्टा उठ खड़े होंगे।"[२०] किन्तु उनका दृढ़ विश्वास था कि यह समाज व्यवस्था न तो बलात् शक्ति से स्थापित होगी और न केवल समाज की परम्परा बदलने से स्थापित होगी। मानव के दृष्टिकोण में परिवर्तन की आवश्यकता है। उसके स्वभाव में परिवर्तन अपेक्षित है। जो केवल शक्ति से समाज परिवर्तन करना चाहते हैं। ऐसे समाजवादियों के सम्बन्ध में वे कहते हैं, "वे भ्रान्त-पथ पर चल रहे हैं। रक्तपात से कभी स्वतन्त्रता समानता, बन्धुत्व की स्थापना धरती पर न हो सकेगी। इस साध्य का साधन तो केवल आध्यात्मिक शक्ति और प्यार है।[२१] सामूहिक स्वार्थ नहीं, केवल प्रेम ही राष्ट्र और जाति निर्विशेष नये समाज की स्थापना में समर्थ है।

दयानन्द ने इन नियमों को आर्य-समाज के सङ्गठन में लागू किया और इसके तत्त्वावधान में कई आश्रमों की स्थापना हुई। आर्य-समाज का संघटनात्मक ढाँचा जनतान्त्रिक चुनाव पर आधारित है। आश्रम इसके सब सदस्यों की सामूहिक सम्पत्ति समझे जाते हैं और प्रत्येक वस्तु की व्यवस्था सब के सहयोग से होती थी। ये अनेक धार्मिक गणतन्त्र (Republic) की तरह थे।[२२]

यद्यपि दयानन्द के अपने विचार थे किन्तु वे 'मनमोदी' विचारक न थे, वे एक क्रियात्मक आदर्शवादी थे। उनका विश्वास था कि वैदिक सभ्यता के आदि स्थान भारत को विश्व में एक विशिष्ट कार्य करना है। किन्तु जब तक भारत परतन्त्र है, वह उस काम को करने में असमर्थ है। इसलिए वे भारत को स्वतन्त्र

१९—अलोकानन्द महाभारती, पृ० १७५, दयानन्द की कल्पना के आदर्शसमाज के लिए द्रष्टव्य है इस पुस्तक का "What is Thakur Dayananda's Scheme नामक अध्याय।

२०—वही पृष्ठ ३०-३१

२१—वही पृ० ३२

२२—वही पृ० ३२

Scanned by CamScanner

करना चाहते थे और उन्होंने भारत की राष्ट्रीयता को एक गतिशील दर्शन दिया। देश को सामाजिक और मानसिक रूप में स्वतन्त्रता के लिए तैयार करना, उनका कार्य था। उन्होंने स्वयं अंग्रेजों के विरुद्ध किसी राजनीतिक आन्दोलन में भाग नहीं लिया; किन्तु अंग्रेज सरकार को उनसे तथा आर्य-समाज से बड़ा भय था। जैसा रोमारोला ने कहा है :—

"वे (स्वामी दयानन्द) अपने को सदा राजनीति और अंग्रेजों के विरोध से अलग बताते थे, किन्तु अंग्रेज सरकार का निश्चय इससे भिन्न था।"[२३] एकबार स्वामीजी जब सिल्चर (असम) में थे तो पुलिस ने उन्हें और उनके दो शिष्यों को पकड़ लिया, किन्तु वे छोड़ दिये गये, क्योंकि किसी के पास उनके विरुद्ध कोई प्रमाण न था। किन्तु स्वामीजी के जो शिष्य सरकारी नौकरी में थे, उन पर सरकार सदा कड़ी निगाह रखती थी।[२४] यह साफ है कि अंग्रेजी शासन ने उनके उपदेश और कार्य के सुदूरगामी परिणाम और क्रान्ति को समझ लिया था। अतः इसमें कोई आश्चर्य नहीं है कि 'दि टाइम्स' की ओर से सर वैलेण्टिन शिरोल (Sir Velentine Chirole) जब १९०७ की अशान्ति के पश्चात् उसके कारणों की खोज करने भारत आये तो उन्होंने अंग्रेजी सत्ता के विरुद्ध आर्य-समाज को एक बड़ा खतरा घोषित किया। इस दिशा में स्वामी दयानन्द और उनके द्वारा स्थापित आर्य-समाज का प्रभाव सुस्पष्ट है। यद्यपि इस विषय पर अब तक हमारे देश में कोई विस्तृत अध्ययन नहीं किया गया है। जैकारियस ने ठीक ही कहा है कि, "स्वामी दयानन्द ने जिस मार्ग की कल्पना की थी, तिलक केवल उस पर चलते गये।"[२५] लाला लाजपत राय का राजनीतिक दृष्टिकोण आर्य-समाज के सिद्धान्तों के आधार पर था।

दयानन्द के विरुद्ध दो आक्षेपों का निराकरण :

स्वामी दयानन्द के प्रमुख अवदानों की एक रूपरेखा प्रस्तुत करने के पश्चात्

२३–Romain Rolland, The Life of Rama Krishna, pp. 157-58.
२४–Alokananda Mahabharati. op. cit., pp. 67-68.
२५–Zacharias, H. C. F. Revascent India p. 39.

Scanned by CamScanner

उनके विरुद्ध दो आक्षेपों का निराकरण करते हैं। कुछ लोग उन्हें प्रतिक्रियावादी, नूतनता विरोधी और उद्धारवादी समझते हैं। उदाहरणार्थ, जैकेरियस ने लिखा है कि उनके (दयानन्द) साथ भारतीय जन-जीवन में रुखाई का प्रवेश हुआ है।"[२६] क्या ये आक्षेप तर्क और ऐतिहासिक विश्लेषण के सम्मुख ठहर पाते हैं ?

यह सत्य है कि दयानन्द ने नूतन भारत के निर्माण का उत्साह विगत वैदिक भारत से प्राप्त किया था। किन्तु इस कारण उन्हें पुनरुद्धार युग अथवा योरुप के सुधारवादी आंदोलन के किसी नेता से अधिक प्रतिक्रियावादी नहीं कहा जा सकता। पुनरुद्धार आंदोलन ग्रीक सभ्यता से उत्साहित हुआ था। सुधारवादी आंदोलन ईसाई चर्चों में व्याप्त भ्रष्टाचार को मिटाने के लिये मूल बाइबल की ओर मुड़ गया था। यदि ये आंदोलन वर्तमान योरुप की जड़ जमा सकते हैं तो क्या यह कहना तर्क सङ्गत है कि दयानन्द प्रतिक्रियावादी और नवीनता विरोधी थे ? श्री दुर्गाप्रसाद ने ठीक ही उनका वर्णन "भारत के लूथर"[२७] के रूप में किया है। यह भूलना न चाहिए कि स्वामी दयानन्द का बड़ा तीव्र विरोध देश के परम्परावादी ब्राह्मणों ने किया था। न वे प्रतिक्रियावादी थे न परम्परावादी, नहीं ही उनका दृष्टिकोण योरुप की वर्तमान चमक-दमक में चौंधिया गया था। इसलिये स्वामी दयानन्द की निन्दा परम्परावादी और नूतनतावादी दोनों ने किया।

अब दूसरे आक्षेप को देखें। दयानन्द शक्ति और गतिशीलता से भरपूर थे। उनका दृढ़ विश्वास था कि राष्ट्रीय पुनरुद्धार निष्क्रियता गतिहीनता और पलायन से नहीं किया जा सकता। आस्था के उत्साह और उद्देश्य की ईमानदारी ने उन्हें प्रभावी बनाया। उनके विचारों और कार्यों ने भारतीय जनता में एक नये उत्साह और शक्ति की सृष्टि की उन्होंने अपना निवेदन "किसी शिक्षित अंग्रेज से नहीं, बल्कि अपने देश के विस्तृत जन-समुदाय से किया।"[२८] उनके सन्देश

२६–वही पृ० ३९

२७–Durga Prasad, "An English Translation of the Satyarth Prakash of Maharshi Swami Dayanand. Sea Introduction p. xii.

२८–B. B. Mazumdar, History of the Indian Reformation p. 68.

Scanned by CamScanner

ने भारतीय जनता के एक वर्ग को हिला दिया और उनके हृदय में अपनी संस्कृति के प्रति अभिमान की भावना पैदा कर दी। अत: दयानन्द के साथ भारतीय जन-जीवन में रुखाई का नहीं, बल्कि आत्म-सम्मान की भावना का जागरण हुआ। और भी जैसा डा० वर्मा ने कहा है, "दयानन्द और आर्य-समाज में प्रकटित संघर्ष अंशत: भारत में स्थित इस्लाम और इसाइयत के दृष्टिकोण के फलस्वरूप था।"[२९]

समापन दृष्टि :

स्वामी दयानन्द के जीवन विचार और कार्यों का विस्तृत अध्ययन डा० के० पी० जायसवाल के निम्न मत को पूर्ण प्रमाणित करेगा, "उन्नीसवीं शती में ऐसा एकेश्वरवाद का उपदेष्टा, मानव एकता का प्रचारक, आध्यात्मिक पूंजीवाद के विरुद्ध जेहाद करनेवाला सफल अन्य कोई (दयानन्द के अतिरिक्त) न था"।[३०] उनके विचारों की समीक्षा से ऐसी बहुत-सी समस्याओं का समाधान निकलेगा जिनसे भारत परेशान है। भारत के इस सन्त को भुला कर हम अपनी रक्षा भी न कर सकेंगे।

२९–Dr. V. P. Varma, op. cit. p. 59.

३०–K. P. Jayaswal's article in Dayananda Commenoration Volume, pp. 162-63.
यह लेख श्री जी०पी० भट्टाचार्य के अंग्रेजी लेख का हिन्दी अनुवाद है।–सम्पादक

Scanned by CamScanner

राम मोहन और रानाडे ने हिन्दुत्व के पहले मोर्चे पर थोड़ी लड़ाई लड़ी थी, जो रक्षा या बचाव का मोर्चा था। स्वामी दयानन्द ने आक्रामकता का थोड़ा बहुत श्री गणेश कर दिया, क्यों कि वास्तविक रक्षा का उपाय तो आक्रमण की ही नीति है। 'सत्यार्थ-प्रकाश' में जहाँ हिन्दुत्व के वैदिक रूप का गहन आख्यान है, वहाँ उसमें ईसाइयत और इस्लाम की आलोचना पर भी अलग-अलग दो समुल्लास हैं। अब तक हिन्दुत्व की निन्दा करने वाले निश्चित थे कि हिन्दू अपना सुधार भले करता हो, किन्तु, बदले में हमारी निन्दा करने का उसे साहस नहीं होगा। किन्तु, इस मेधावी एवं योद्धा संन्यासी ने उनकी आशा पर पानी फेर दिया। यही नहीं, प्रत्युत जो बात राममोहन ; केशवचन्द्र और रानाडे के ध्यान में भी नहीं आयी थी, उस बात को लेकर स्वामी दयानन्द के शिष्य आगे बढ़े और उन्होंने घोषणा कर दी कि धर्मच्युत प्रत्येक अवस्थामें अपने धर्म में वापस आ सकता है एवं अहिन्दू भी यदि चाहें तो हिन्दू-धर्म में प्रवेश पा सकते हैं। यह केवल सुधार की वाणी नहीं थी, जाग्रत हिन्दुत्व का समरनाद था! और सत्य ही, रणारूढ़ हिन्दुत्व के जैसे निर्भीक नेता स्वामी दयानन्द हुए, वैसा और कोई नहीं हुआ।

—दिनकर

Scanned by CamScanner